पंचम अध्याय

जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों की प्रासंगिकता

वर्तमान युग ज्ञान-विज्ञान का युग है । ज्ञान-विज्ञान का जितना विकास बीसवीं सदी में हुआ उतना विकास मानव सभ्यता की किसी शताब्दियों में नहीं हुआ । आज मानव ने भौतिक सुख को प्राप्त करने के अपार साधनों की खोज कर ली है । आज उसने परमाणु विखण्डन की शक्ति को पीछे छोड़ते हुए हाइड्रोजन बम तक का विकास कर लिया है। इन्टरनेट के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व वैश्विक गाँव में बदल चुका है । वर्तमान में सहस्त्र विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और शोध केन्द्र ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा और शोधकार्य में संलग्न है किन्तु यह दुर्भाग्य ही है कि शिक्षा एवं शोध के इन विविध उपक्रमों के माध्यम से हम एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं शान्तिप्रिय मानव समाज की रचना नहीं कर सके ।

प्राचीन व मध्यकालीन युग की समस्याएं जैसे बाढ़, सुखा, भुखमरी, गरीबी, मनुष्य का शोषण आदि आज भी जीवंत है । किसी भी प्रकार की राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था जैसे मार्क्सवादी, समाजवादी, पूंजीवादी या तकनीकी परिवर्तन इन समस्याओं को दूर करने में या शोषण को रोकने में सक्षम नहीं हो पायी है । विज्ञान व तकनीकी के युग में प्रत्येक मनुष्य शक्ति के लिए संघर्ष कर रहा है, एक-दूसरे से अधिक प्रसिद्धि व स्वार्थ लोलुपता के कारण संघर्षरत है । तनाव, हिंसा व विद्वेष की भावना से

मानव जगत जकड़ा हुआ है । इन परिस्थितियों में नैतिक प्रश्न उठते हैं कि हम कैसे जीए? जीने का उपयुक्त मार्ग क्या होगा? हमारे जीने का क्या उद्देश्य है ? वर्तमान समय में मनुष्य भौतिक सुख को प्राप्त करने की दौड़ में लगा हुआ है । अधिकतर मनुष्य भौतिक सुख को ही वास्तविक सुख मानते हैं लेकिन बहुत से व्यक्ति ऐसे भी है जो वास्तविक सुख व मन की शांति चाहते हैं । वे नैतिक मूल्यों के साथ जीना चाहते हैं । समाज में बढ़ती हिंसा व दुर्व्यवहार से यह साबित भी होता है कि वास्तविक सुख भौतिक सुख नहीं है । यदि ऐसा होता तो शायद हिंसा, चोरी, डैकेती, तनाव व आंतकवाद जैसी समस्याएं खत्म हो जाती । आज आवश्यकता है कि मनुष्य जगत् को सही ज्ञान दिया जाए । जैन-दर्शन के त्रिरत्न सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और सम्यग्-चरित्र का जब व्यक्ति में विकास होता है तभी उसके जीवन में पूर्णता आती है । जैन-दर्शन बहुत प्राचीन है परन्तु इसका ज्ञान आधुनिक मानव जीवन के लिए भी बहुत उपयोगी है ।

जैन-दर्शन को सर्वग्राही एवं उदार दर्शन माना जाता है । यह विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को सुख, शांति एवं मुक्ति का संदेश देता है । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों की प्रासंगिकता पर चर्चा करें । इस अध्याय में हम जैन-दर्शन के नीति शास्त्र या नैतिक-शिक्षाओं की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता पर विस्तृत रूप में चर्चा करगें जो इस प्रकार है -

5.1 त्रिरत्न

जैन-दर्शन में सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान और सम्यग्-चरित्र को त्रिरत्न कहा गया है । त्रिरत्न को मोक्ष मार्ग भी कहा जाता है । त्रिरत्न को धारण करने से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है । जैन-दर्शन में सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र को मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक माना है । सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र की प्रासंगिकता इस प्रकार है -

5.1.1 सम्यग्-दर्शन

सत्य ज्ञान के प्रति श्रद्धा की भावना रखना सम्यग्-दर्शन है । तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है कि तत्त्व रूपी पदार्थों की श्रद्धा या दृढ़ प्रतीति सम्यग्-दर्शन है।[1] वर्तमान युग आस्थाहीन, कुण्ठाग्रस्त एवं भयत्रस्त है, इस आस्थाहीन युग में जीवन के विकास के लिए आस्था की बहुत अधिक आवश्यकता है । मोह-माया व भोगविलास पूर्ण जीवन में आंतरिक शांति व स्थिरता के लिए सम्यग्-दर्शन को धारण करना अति आवश्यक है । आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए आत्मदर्शन अर्थात् सम्यग्-दर्शन की महती आवश्यकता है ।[2]

मनुष्य-मनुष्य के मध्य मतभेद है, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ही सही व ज्ञानवान मानता है । जिसके कारण वह सही व गलत तथा सत्य व असत्य में विभेद करने में अक्षम हो जाता है । जिससे वह अपनी आत्मशक्ति को जाने बगैर गलत लक्ष्य व इच्छाशक्ति का निर्धारण कर

लेता है । परिणामस्वरूप वह तनाव, क्रोध, हिंसा व घृणा की भावना से ग्रस्त हो जाता है । जिससे समाज में धीरे-धीरे वैमनस्यता की भावना पनपने लगती है । यदि मनुष्य को सम्यग्-दर्शन अर्थात् परस्पर विश्वास व श्रद्धा उत्पन्न हो जाए तथा वह सही व गलत की पहचान करने में सक्षम हो जाए तो एक-दूसरे से द्वन्द्व, घृणा व द्वेष भी स्वतः दूर हो जाएगा ।

सम्यग्-दर्शन मनुष्य को जीवन के उद्देश्य व लक्ष्यों को निर्धारित करने में सक्षम बनाता है तथा परस्पर विश्वास व श्रद्धा की भावना उत्पन्न करता है । परस्पर विश्वास व श्रद्धा से समाज में विद्यमान द्वेष व घृणा की भावना परस्पर सहयोग, नम्रता, दया व परहित में परिवर्तित हो जाती है । अतः कहा जा सकता है कि समाज में विद्यमान घृणा व द्वेष की भावना को सम्यग्-दर्शन के अभ्यास से दूर किया जा सकता है । उत्तराध्ययन गाथा में कहा है कि

"नांदसविस्सनाणं नाणेण विना नहुँति चरण गुणा ।"[3]

अर्थात् सम्यग्-दर्शन बिना सम्यग्-ज्ञान नहीं और उसके बिना सम्यग्-चरित्र नहीं । सम्यग्-दर्शन के मूल अंग राग द्वेष को दूर करके मोह-माया से मन को धीरे-धीरे दूर करने पर बल देता है । ये अंग न केवल व्यक्ति के आत्म को ही शुद्ध बनाने पर बल देते हैं अपितु दूसरों को भी सही मार्ग दिखाने के लिए प्रेरित करते हैं । यदि स्वयं को सत्य ज्ञान की प्राप्ति हो गई है तो इसे अन्य में भी बाँट देना तथा सभी के प्रति प्रेमभाव व स्नेह भाव रखना आदि विशेषताएं 'सर्वजन हिताय' को

महत्त्व देती है ।[4] तत्त्वार्थ सूत्र में "परस्परोपग्रहो जीणानाम" अर्थात् परस्पर एक-दूसरे का उपकार ही जीव का धर्म बताया गया है ।[5] जिस व्यक्ति ने जीवन के यथार्थ को जान लिया है वह कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी स्वयं को संतुलित रखने में सक्षम होता है ।[6] भौतिकवादी सुख की चाहत में हमारी प्रवृत्ति या स्वभाव दूसरों के प्रति नकारात्मक बन गया है। हम जीवन में गलत आदतों के आदि हो चुके हैं तथा दूसरों के प्रति नकारात्मकता हमारे मन में बैठ चुकी है । सम्यग्-दर्शन हमें यथार्थ का बोध करवाकर हमारे स्वभाव व नकारात्मक विचारों को बदलकर सही दिशा की ओर मोड़ता है । हम गलत मार्ग पर चलकर स्वयं के साथ-साथ समाज में भी बुरा प्रभाव छोड़ते हैं । सम्यग्-दर्शन व्यक्ति को सही मार्ग दिखाता है जिससे समाज में शांति व सहिष्णुता के मूल्यों का विकास होता है ।[7]

हमारे जीवन में भ्रम, अहंकार व स्वार्थता का कारण यथार्थ ज्ञान का अभाव होना है । हम तत्त्वों को यथार्थ रूप में नहीं देखते अपितु तत्त्व को उस रूप में देखते हैं जैसा वह है नहीं, हम यथार्थ सत्य को तब ही जान सकते है जब हम स्वयं को यथार्थ सत्य देखने के लिए तत्पर करें, मन में दृढ़ निश्चय करें और स्वयं में बदलाव करें तब ही यथार्थ को जान सकते हैं । कोई दूसरा हमें बदलने की जबरदस्ती नहीं कर सकता, हमें स्वयं को स्वयं ही बदलना होगा । जैसे घोड़े को पानी के पास ले जा सकते हैं, परन्तु उसे पिला नहीं सकते । इसलिए

सम्यग्–दर्शन भी मार्ग दिखा सकता है लेकिन आत्मसाक्षात्कार हमें स्वयं ही करना होगा ।[8] सम्यग्–दर्शन सत्य के प्रति विश्वास निर्मित करने का सिद्धान्त है। केवल बाहरी तौर पर सत्य को धारण नहीं किया जा सकता। सदाचार का पालन करने के लिए न केवल शारीरिक अपितु मानसिक स्तर पर भी सजग रहना पड़ता है । मानसिक सतर्कता ही सम्यग्–दर्शन है जो व्यक्ति के आत्म से जुड़ी हुई है । वर्तमान में मनुष्य के दोगले चरित्र के संदर्भ में सम्यग्–दर्शन प्रासंगिक है यह व्यक्ति को आंतरिक, आत्मिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तन करने के लिए मार्ग प्रदर्शित करता है ।[9]

अत: भौतिकवादी युग में आंतरिक व आध्यात्मिक शांति के लिए सम्यग्–दर्शन को धारण करना अति लाभकारी सिद्ध हो सकता है ।

5.1.2 सम्यग्–ज्ञान

संशय व भ्रम से रहित यथार्थ रूप के ज्ञान को ही सम्यग्–ज्ञान कहा गया है ।[10]

सम्यग्–दर्शन के पश्चात् मोक्ष का दूसरा मार्ग सम्यग्–ज्ञान है । आज का मानव मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर चलना शायद उचित न समझे लेकिन सम्यग्–ज्ञान की अवधारणा केवल मोक्ष प्राप्ति या भिक्षु वर्ग के लिए ही उपयोगी नहीं है अपितु यह मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में भी उपयोगी है। सही दिशा व लक्ष्य का निर्धारण होने के पश्चात् सही ज्ञान को संग्रहित करना पड़ता है । सही ज्ञान के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं है । लक्ष्य की प्राप्ति न होने पर हम एक दूसरे पर असफल होने

का आरोप लगाते हैं जबकि इसका मुख्य कारण सही ज्ञान का अभाव होना है । यदि मनुष्य को यथार्थ ज्ञान की अनुभूति हो जाए तो वह अपनी कमियों को दूर करके लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है । अज्ञान के कारण हम एक-दूसरे से वैरभाव रखते हैं, हमारा मन कलुषित विचारों से भरा हुआ है । उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण हम केवल अपना हित ही पूरा करने में लगे हुए हैं । दया, सहानुभूति, करूणा व स्नेह के भाव मनुष्य से कोसों दूर हो चुके हैं । मनुष्य अपने प्रियजनों के साथ भी स्वार्थीपन दिखाता है । अब पारिवारिक संबंधों का आधार भी स्वार्थ होता जा रहा है । इसलिए यह आवश्यक है कि इस चकाचौंध की दुनिया में मनुष्य को यथार्थ ज्ञान हो ताकि समाज में पुनः परार्थ की भावना को कायम किया जा सके । यथार्थ ज्ञान मनुष्य को बुराई का त्याग करके भलाई को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है । इसके साथ ही यथार्थ ज्ञान हमें शुभकर्म करने के लिए प्रेरित करता है ।[11]

मिथ्या ज्ञान के कारण हम वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पाते भ्रमवश हम उस वस्तु को अन्य रूप में देखने लगते हैं । जैसे रस्सी को भ्रमवश सांप समझना, जबकि सांप वहां है ही नहीं । इसी तरह हम भ्रम के कारण गलत ज्ञान को प्राप्त करते रहते हैं जिससे मन में भय बना रहता है । यथार्थ ज्ञान से भय को दूर करके निडर व स्वावलम्बी बना जा सकता है । स्वावलम्बन व उत्साह से ही जीवन के

लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है और आत्मिक शांति की अनुभूति हो सकती है ।[12]

उत्तराध्ययन में कहा है कि सम्यग्-ज्ञान के बिना सम्यग् आचरण को धारण नहीं किया जा सकता ।[13] अन्य भारतीय दर्शनों में भी ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग माना गया है । यथार्थ ज्ञान से ही इस बन्धन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । उपनिषद् में भी कहा गया है कि - 'तमसो मा ज्योतिर्गमय ।'[14] अर्थात् अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चल । सभी भारतीय दर्शनों में ज्ञान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । सही ज्ञान का महत्त्व केवल मोक्ष प्राप्ति में ही नहीं है अपितु व्यावहारिक जीवन में भी है । सही ज्ञान के अभाव में कोई पथिक मार्ग से भटककर कहीं कठिन मार्ग पर पहुंच सकता है जहां उसके प्राणों को भी खतरा हो सकता है । एक विद्यार्थी को यदि सही ज्ञान नहीं हो तो वह परीक्षा में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता । सही ज्ञान का अभाव न केवल व्यक्ति के लिए अपितु राष्ट्र के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकता है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है- उत्तरी कोरिया के राष्ट्र प्रमुख द्वारा किए जा रहें अत्याचार व युद्धकारक राष्ट्रनीति । उत्तरी कोरिया की आम जनता राष्ट्र प्रमुख के मनमाने आदेशों से त्राही-त्राही कर रही है तथा भुखमरी और गरीबी का प्रकोप फैला हुआ है लेकिन फिर भी वह परमाणु आयुध सामग्री निर्मित करने में लगा हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि सम्यग्-ज्ञान का अभाव सम्पूर्ण विश्व को कुछ ही क्षण में नष्ट कर

सकता है जबकि सम्यग्–ज्ञान की उपस्थिति से विश्व में शांति, सहिष्णुता, विश्वास व नि:स्वार्थ की भावना का उद्भव किया जा सकता है ।[15]

सम्यग्–ज्ञान और सम्यग्–दर्शन मानसिक प्रक्रियाएं हैं । ये व्यक्ति के मन को पवित्र बनाने पर बल देती हैं ।[16] वर्तमान में सभी समस्याओं का मूल कारण व्यक्ति के विचार हैं जो मस्तिष्क की उपज हैं । यदि हमारे कुविचार ही सद्विचार में परिवर्तित हो जाए तो इस धरती पर ही स्वर्ग बनाया जा सकता है ।

5.1.3 सम्यग्–चरित्र

सम्यग्–चरित्र से अभिप्राय है–सम्यग्–दर्शन और सम्यग्–ज्ञान को धारण करते हुए सदाचार का पालन करना । बाह्य जगत् के पदार्थों के प्रति राग–द्वेष के भाव से रहित होकर तटस्थता का भाव रखते हुए जीवन व्यतीत करना सम्यग्–चरित्र है ।[17]

सम्यग्–ज्ञान होने के उपरान्त ही व्यक्ति सम्यग्–चरित्र का संपूर्णता से पालन कर सकता है । सम्यग्–चरित्र हमारे व्यावहारिक पक्ष से जुड़ा हुआ है । सम्यग्–दर्शन व सम्यग्–ज्ञान मानसिक प्रक्रियाएं हैं लेकिन सम्यग्–चरित्र व्यावहारिक प्रक्रिया है । सम्यग्–चरित्र में पंचमहाव्रत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।[18] उपभोक्तावादी प्रवृत्ति बढ़ने के कारण मनुष्य अधिक से अधिक वस्तुओं को प्राप्त करने की दौड़ में लगा हुआ है । मनुष्य का अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है जिसके कारण उसकी इच्छाएं निरंतर बढ़ती जा रही हैं जिन्हें पूरा करने के लिए वह हिंसा, असत्य व चोरी का भी सहारा लेता

है ।[19] परिणामस्वरूप मानसिक तनाव बढ़ता जाता है। इसके साथ ही हिंसा के कारण वह दूसरे प्राणियों के जीवन का भी हनन करता है । हिंसा को हतोत्साहित करने के क्रम में भगवान् महावीर ने कहा है कि सम्पूर्ण मानव जाति एक ही है । जैन-दर्शन में कहा गया है कि सभी प्राणी समान है इसलिए हमें किसी के प्राणों का हनन करने का अधिकार नहीं है । अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास तथा उसका पालन ही मानव जाति के अस्तित्व को बनाए रख सकता है ।

विज्ञान व तकनीकी विकास के साथ-साथ मनुष्य का आध्यात्मिक विकास नहीं हो पाया । वर्तमान में हम परमाणु व जैविक हथियारों के युग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं । जिससे मानव जाति के अस्तित्व पर प्रत्येक क्षण खतरा मंडराता रहता है । उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण मानसिक तनाव चरम अवस्था में है । विश्व में चारों तरफ हिंसा, द्वेष, घृणा, भय, वैचारिक द्वन्द्व, आतंकवाद व देशद्रोह जैसी समस्याएं व्याप्त हैं। नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन बहुत ही शीघ्रता से हो रहा है । इसके साथ ही नैतिक मूल्यों का प्रारूप भी बदल गया है । अधिक धनवान व शक्तिशाली व्यक्ति को ही समाज में श्रेष्ठ माना जाने लगा है । भौतिक चकाचौंध ने मनुष्य को वास्तविक ज्ञान से दूर कर दिया है । भ्रमवश वह इसी ज्ञान को वास्तविक ज्ञान मान बैठता है । इस तरह का मिथ्या ज्ञान होने के कारण ही हम वास्तविक ज्ञान अर्थात् सच्चे ज्ञान को नहीं जान पाते । इस मिथ्या ज्ञान के अनुसार ही हमारी चारित्रिक प्रवृत्तियां विकसित

हो जाती हैं । फलतः हमारे चरित्र से सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय व ब्रह्मचर्य जैसे गुण दूर होते जाते हैं और असत्य, हिंसा, चोरी व उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों का समावेश होता जाता है ।

सम्पूर्ण विश्व में बढ़ते विद्रोह, अशांति, देशद्रोह व आतंकवादी घटनाओं से सभी राष्ट्र चिंतित हैं, बुद्धिजीवी वर्ग विश्व शांति कायम करने के लिए प्रयासरत है । संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य वैश्विक संस्थाओं के द्वारा समय-समय पर निर्देश जारी किए जाते हैं लेकिन सभी का परिणाम लगभग शून्य ही रहा है । इसके पीछे का कारण शायद आध्यात्मिक मूल्यों का विघटन व सच्चे ज्ञान का अभाव रहा है ।

विश्व में शांति कायम करने के लिए अहिंसा परम आवश्यक है । इसके साथ ही अर्थहीन हथियारों के प्रति भी जागरूक होना आवश्यक है। मनुष्य को अपने सर्वोत्तम गुण को जागृत करना होगा तथा अहिंसा में दृढ़ विश्वास कायम करना होगा तब ही विश्व में शांति, सौहार्द व भाईचारे की भावना को पुनः स्थापित किया जा सकता है । सम्यग्-चरित्र से आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण होता है जो समाज में सुख, शांति व स्मृद्धि का पर्याय निर्मित करता है । चतुर्थ अध्याय में सम्यग्-चरित्र के अन्तर्गत समिति, गुप्ति, धर्म, पंच महाव्रत आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है । इसलिए यहाँ सभी पक्षों की प्रासंगिकता पर चर्चा की जाएगी जो इस प्रकार है-

5.1.3.1 समिति

जैन-दर्शन में गृहस्थ व भिक्षु जीवन व्यतीत करते हुए कुछ सावधानियाँ रखने पर चर्चा की गई, जिन्हें समिति कहा गया है । जैन-दर्शन में पाँच समितियाँ वर्णित हैं ।[20] कुछ शरारती तत्त्व अपने शौक के लिए प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं, ईर्या समिति हमें हिंसा करने से मनाही करती है । इससे समभाव की भावना का विकास होता है । आधुनिक मानव दूसरों की निंदा करने में अपना कीमती समय व्यर्थ करता है इससे परस्पर वैमनस्य की भावना उत्पन्न हो जाती है । भाषा समिति का पालन करते हुए हम वैमनस्य के स्थान पर स्नेहभाव को प्रतिस्थापित कर सकते है । गृहस्थ व्यक्ति आदान-निक्षेपण व उत्सर्ग समिति का पालन करके अपने घर व आस-पास के वातावरण को साफ-सुथरा रख सकता है जो एक प्रकार से 'स्वच्छ भारत अभियान' में सहयोगी भूमिका निभा सकती हैं । भिक्षुवर्ग नियमों के अनुसार भिक्षावृत्ति करके अपने भिक्षुजीवन के साथ-साथ समाज में शांति बनाए रखने में अहम् भूमिका निभा सकता है।

अत: कहा जा सकता है कि वर्तमान में समितियों का पालन करते हुए समभाव, स्नेहभाव व शांति भाव के साथ-साथ स्वच्छता के मूल्यों का प्रसार किया जा सकता है, इसलिए जैन-दर्शन में वर्णित समिति आज भी प्रासंगिक है ।

5.1.3.2 गुप्ति

जैन-दर्शन में वर्णित गुप्तियाँ मनुष्य को अशुभ प्रवृतियों से निवृत्ति की ओर ले जाती हैं । मन, वचन तथा शरीर से अशुभ कर्मों पर नियन्त्रण मनो, वाग व काय गुप्ति है ।[21] इन गुप्तियों का पालन करके व्यक्ति सम्यक्त्व की दिशा में आगे बढ़ता जाता है तथा धीरे-धीरे पंच महाव्रत को पूर्ण रूप से धारण कर लेता है । इससे मनुष्य की कथनी और करनी एक हो जाती है तथा परस्पर विश्वास की भावना मजबूत होती जाती है ।

5.1.3.3 दस धर्म

सत्य, क्षमा, शौच, तप, संयम, त्याग, विरक्ति, मार्दव, सरलता और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म व्यक्ति के जीवन को सरल व सहज बनाते हैं ।[22] 'मैं' की भावना को त्याग व क्षमा से 'हम की भावना' में बदला जा सकता है । उपभोक्तावादी संस्कृति पर संयम, सरलता व विरक्ति से नियंत्रण किया जा सकता है तथा सत्य, तप, मार्दव व ब्रह्मचर्य से व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में भी संयमित रह सकता है । अत: कहा जा सकता है कि प्रतिक्षण घटित हो रही नई-नई परिस्थितियों में व्यक्ति इन धर्मों के पालन से तटस्थ बना रह सकता है ।

5.1.3.4 पंच महाव्रत

सम्यग्-चरित्र के पालन में पंच महाव्रत बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । पंच महाव्रत सम्यग्-चरित्र की आधारशीला हैं, इन्हें धारण करके ही व्यक्ति

पूर्णता को प्राप्त कर सकता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह जैन-दर्शन में पांच महाव्रत बताए गए हैं । भिक्षु वर्ग के लिए पंच महाव्रत तथा गृहस्थ के लिए अणुव्रत का प्रावधान किया गया है । अणुव्रत महाव्रतों के सूक्ष्माति सूक्ष्म अंश है ।[23] जिनकी चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गई है ।

(1) अहिंसा

किसी भी परिस्थिति में किसी भी प्राणी का जीवन पर्यन्त न तो स्वयं और न दूसरों से प्राणघात करना और न ही करने वाले का समर्थन करना अहिंसा है ।[24] जैन-दर्शन का सम्पूर्ण आचारशास्त्र अहिंसा रूपी महाव्रत पर निर्मित है । समाज में व्याप्त बुराइयों को खत्म करने में अहिंसा रामबाण सिद्ध हो सकती है । यह सर्वसिद्ध है कि हिंसक युद्ध में मानव सभ्यता ने ऐसा कुछ भी हासिल नहीं किया जो उसने बिना युद्ध के नहीं किया हो ।[25] अर्थात् हम हिंसक होकर कुछ भी अच्छा प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि हम अहिंसक बनने पर ही समाज में शांति व खुशी को फैला सकते है ।

वर्तमान समय में सामाजिक अन्याय, सांप्रदायिकता, आतंकवाद व असहिष्णुता ने विकराल रूप धारण कर रखा है । न केवल मानव-मानव के मध्य ही हिंसक प्रवृत्ति है अपितु मानव निरिह प्राणियों के प्रति भी हिंसक व्यवहार करता है । उपरोक्त समस्याओं को अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करके ही दूर किया जा सकता है क्योंकि गांधी जी ने कहा

है कि सत्य, सामंजस्यता, बंधुता, समानता व न्याय आदि अहिंसा के सहजगुण है । इसलिए अहिंसा को धारण करके समाज में सामंजस्य, बंधुता, समानता व सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सकता है ।

(2) सत्य

जैन-दर्शन में सत्य दूसरा महाव्रत है । गृहस्थ के लिए सत्य अणुव्रत बताया गया है जबकि भिक्षु के लिए सत्य महाव्रत । जैन-दर्शन में सत्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दूसरों को प्रिय, हितकारी और यथार्थ वचन बोलना सत्यव्रत है ।[26] भौतिकवादी युग में मनुष्य में लालच की भावना बहुत अधिक बढ़ गई है । जितना उसे प्राप्त है वह उससे और अधिक प्राप्त करने की इच्छा रखता है और यह इच्छा या लालच बढ़ता ही जाता है । अपनी इच्छापूर्ति के लिए वह एक दिन में सैंकड़ों झूठ बोलता है जिससे लड़ाई-झगड़े की घटनाएं भी बढ़ती हैं । फलतः सामाजिक अशांति में वृद्धि होती जाती है । जैन-दर्शन में कहा गया है कि क्रोध, लालच, भय और उपहास असत्य को पैदा करने वाले कारक हैं।[27] जो व्यक्ति क्रोध, लालच, भय और उपहास का त्याग कर सकता है वही व्यक्ति जीवन में सत्यव्रत का पालन कर सकता है ।

वर्तमान में झूठ का बहुत-बड़ा कारोबार फैला हुआ है, झूठे केस दायर किए जाते हैं जिससे भोले-भाले लोगों को कचहरियों में चक्कर काटने पड़ते हैं, जिससे उनका समय व धन दोनों ही नष्ट होते हैं । परिणामस्वरूप मानसिक अशांति बढ़ती है जिससे क्रोध व हिंसात्मक व्यवहार

की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है । इसके अतिरिक्त एक झूठ बोलने पर उसके बाद उस झूठ को छिपाने के लिए हजारों झूठ बोलने पड़ते हैं और असत्य की यह शृंखला बढ़ती चली जाती है जो मनुष्य को यथार्थ से दूर ले जाती है । सत्यव्रत का पालन करके हम मानसिक तनाव, क्रोध व हिंसा को दूर कर सकते हैं । इसलिए कहा जा सकता है कि सामाजिक शांति की स्थापना हेतु सत्य महाव्रत आज भी प्रासंगिक है । सत्य की सत्ता को कभी भी कम करके नहीं आंका जा सकता ।

(3) अस्तेय

किसी भी प्रकार की सम्पत्ति को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करना अस्तेय व्रत है ।[28] जैन-दर्शन में चोरी करने को किसी के प्राणों की हत्या करने के समान माना है । मुद्रा विनिमय पद्धति में तो दैनिक उपभोग की वस्तुएं भी मुद्रा से ही प्राप्त की जाती है यदि किसी व्यक्ति के धन की चोरी कर ली जाती है तो वह कुछ समय के लिए अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाएगा । यह एक प्रकार से हिंसा है । कहा भी गया है कि - जिसकी वस्तु या पैसा खो गया है, वह जिसे प्राप्त हुआ है, उसके द्वारा न लौटाए जाने पर जो मानसिक वेदना होती है वह हिंसा से भिन्न नहीं है ।[29] वर्तमान युग में भ्रष्टाचार, तस्करी, चोर-बाजारी व घूसखोरी बहुत अधिक बढ़ गयी जिससे समाज में आर्थिक विषमता ने अपनी जड़े गहरी कर ली है । कालाबाजारी व भ्रष्टाचार को कम करने हेतु भारत सरकार द्वारा बड़े नोटों

का विमुद्रीकरण किया गया जो कि एक सराहनीय प्रयास था । मुद्रा केंद्रित युग में चोरी की घटनाएं बहुत अधिक बढ़ी हैं । आए दिन अखबार चोरी व डकैती की वारदातों से भरा रहता है । सम्पूर्ण समाज सदैव भयभीत रहता है कि कहीं उनके साथ चोरी की घटना घटित न हो जाए । इन परिस्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि जैन-दर्शन द्वारा प्रतिपादित अस्तेय व्रत आधुनिक युग में अधिक प्रासंगिक है । इसे धारण करके समाज में भयरहित वातावरण निर्मित किया जा सकता है । आज भी चोरी को अपराध ही माना जाता है, भारतीय दण्ड संहिता में चोरी करने पर दण्ड का प्रावधान किया गया है जो सिद्ध करता है कि चोरी करना अपराध है । अत: कहा जा सकता है कि भयमुक्त, हिंसा रहित व समानता युक्त समाज का निर्माण करने में अस्तेय व्रत अहम् भूमिका निभा सकता है ।

(4) ब्रह्मचर्य

जैन-दर्शन में गृहस्थ के लिए परस्त्रीगमन का त्याग और अपनी स्त्री में ही सन्तोष को ब्रह्मचर्य कहा गया है ।[30] जबकि भिक्षु के लिए स्त्री-संग के त्याग को ब्रह्मचर्य बताया गया है । आधुनिक मानव भ्रमवश शारीरिक सुख को ही परम सुख मानता है । शारीरिक सुख प्राप्ति हेतु वह अपने नैतिक व सामाजिक मूल्यों के विरूद्ध जाकर कार्यों को निष्पादित करता है । समाज में रिश्तों के प्रति आदर व सम्मान कम हो रहा है । पिता-पुत्र, भाई-बहन, माता-पुत्र के सम्बन्धों के मध्य खुलापन बढ़ता जा

रहा है । इस खुलेपन को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जा रही है जबकि इसके परिणाम विपरीत प्रकट हो रहे हैं । मनुष्य की काम इच्छाएं इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि पिता भी अपनी पुत्री को काम इच्छा की दृष्टि से देखने लगा है । समाज में अनैतिक सम्बन्धों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है जिससे एक संतुलित व प्रकृतिसम्मत समाज का ढांचा विखंडित हो रहा है । महिलाओं के प्रति हिंसा व बलात्कार जैसी घटनाओं से अखबार रंगे रहते हैं । सामाजिक मूल्यों की तिलांजलि करके मनुष्य काम-भोग इच्छाओं को पूरा करने में लगा हुआ है । इन बढ़ते घिनौने कार्यों से समाज को छुटकारा दिलवाना आज अति आवश्यक है ।

जैन-दर्शन द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके हम अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण कर सकते हैं ।[31] स्त्रियों को केवल उपभोग की वस्तु न मानकर तथा रति-क्रीड़ा के स्मरण का त्याग करके नैतिक व सामाजिक मूल्यों को पुनः स्थापित किया जा सकता है ।[32] यदि मनुष्य अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों को माता, बहन व बेटी के समान समझे तो समाज में स्त्रियों के प्रति भोग-लोलुप दृष्टि को कम किया जा सकता है।[33]

अतः कहा जा सकता है कि इस भोग-विलासी जीवन में अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करके ही ब्रह्मचर्य का पालन करके समाज में सुव्यवस्था बनाए रखी जा सकती है । समाज में निरन्तर चरित्रहीनता की बढ़ती समस्या को भी ब्रह्मचर्य धारण करके दूर किया जा सकता है। इस

भौतिकवादी युग में आदर्शों की स्थापना करने में ब्रह्मचर्य महाव्रत अति प्रासंगिक है ।

5. अपरिग्रह

आवश्यकता से अधिक सामग्री का संग्रह नहीं करना अपरिग्रह है । अपरिग्रह का पालन इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने के उपरान्त ही किया जा सकता है । अपरिग्रह भौतिक वस्तुओं के संचय से सम्बन्धित है । भौतिक वस्तुओं के असमान संग्रह से ही समाज में वस्तुओं का असमान वितरण है । किसी व्यक्ति के पास अरबों की सम्पत्ति है तो किसी व्यक्ति के पास मूलभूत सुविधाएं भी नहीं है । उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि परिग्रह का मूल कारण 'इच्छा' है । आगे कहा है कि व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक पीड़ा का कारण पदार्थ के प्रति आसक्त भाव का होना है ।[34] अनासक्त भाव ही इस पीड़ा को कम कर सकता है और अपरिग्रह इच्छाओं को संयमित करने व अनासक्त भाव को प्रश्रय देता है ।

वर्तमान में प्रत्येक मनुष्य की असीमित इच्छाएँ हैं जबकि भौतिक सम्पदाएं सीमित हैं । इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की इच्छापूर्ति करना अंसभव है । समाजहित व व्यक्तिगत हित के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी इच्छाओं को सीमित करें ।[35] गांधी जी ने कहा है कि "प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता को पूरा कर सकती है परन्तु लालच की पूर्ति नहीं कर सकती ।" इसलिए यह आवश्यक है कि अनावश्यक संग्रह

न किया जाए तथा सभी के मध्य प्राकृतिक संसाधनों व धन का समान वितरण किया जाए । अपरिग्रह का पालन बलपूर्वक न करके इच्छापूर्वक होना चाहिए । ऐच्छिक पालन ही इस उपभोक्तावादी युग में स्थायी समाधान कर सकता है । इससे सामाजिक न्याय और समान वितरण को स्थापित किया जा सकता है । अपरिग्रह को व्यावहारिक धरातल पर धारण करके ही गरीबी की समस्या को जड़ से दूर किया जा सकता है। इच्छाओं पर सही रूप से नियंत्रण करने पर व्याकुलता व तनाव को दूर किया जा सकता है जो सम्पत्ति व स्वामित्व से सहसंबंधित है ।[36] तनाव से मुक्ति व्यक्ति को मानसिक शांति प्रदान करेगी । इसलिए कहा जा सकता है कि चिंताग्रस्त व तनावपूर्ण आधुनिक जीवन में अपरिग्रह एक उपचारात्मक समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

भौतिक संसाधनों के संग्रह में केवल व्यक्ति ही लिप्त नहीं है अपितु राष्ट्र भी एक-दूसरे की सीमाओं का उल्लंघन कर रहे हैं । अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपरिग्रह की भावना का प्रचार-प्रसार व धारण करके युद्धों के कारण निर्मित वैश्विक तनाव तथा भावी युद्धों की संभावना को कम किया जा सकता है ।[37]

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति सम्पति के असमान वितरण व दूसरों का शोषण करने में संलिप्त है उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[38] पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण कुछ ही लोगों के हाथ में सम्पति है जिससे समाज में घृणा, द्वेष, शोषण तथा सामाजिक संघर्ष में

बहुत अधिक वृद्धि हुई है । भगवान् महावीर द्वारा दिया गया अपरिग्रह व्रत ही स्थिर व शांत रूप से आर्थिक विषमता को दूर कर सकता है । इस दिशा में महात्मा गांधी व विनोबा भावे ने धर्मार्थ न्यास के माध्यम से सराहनीय प्रयास किए हैं । वर्तमान में भी कुछ लोग धर्मार्थ न्यास के माध्यम से गरीब लोगों को स्वास्थ सुविधा, शिक्षा व भोजन उपलब्ध करवा रहे हैं । अत: कहा जा सकता है कि अपरिग्रह की भावना से हिंसा को भी दूर किया जा सकता है और कल्याणकारी समाज का निर्माण किया जा सकता है ।

5.2 अनुप्रेक्षाएं

जैन-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिए वैराग्य भावना का होना अति आवश्यक माना है । वैराग्य की प्राप्ति हेतु शरीर व मन से बार-बार वैराग्य प्राप्ति में सहायक भावों का चिंतन करने को अनुप्रेक्षा कहा गया है।[39] ध्यान की अवस्था में जाने के लिए इन बारह अनुप्रेक्षाओं का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है । ये अनुप्रेक्षाएं व्यक्ति को राग व मोह-माया से दूर लेकर जाती हैं ।[40] यदि वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है तो मनुष्य के सभी प्रकार के दु:ख दूर हो जाते हैं तथा आत्म साक्षात्कार हो जाता है । यदि लौकिक संदर्भ में देखा जाए तो जैन-दर्शन की अनुप्रेक्षा की अवधारणा हमें निरन्तर प्रयास करने का संदेश देती है । यह व्यक्ति को परिश्रमी व कर्मठ बनने के लिए प्रेरित करती है । अनुप्रेक्षा के अनुसार निरन्तर अभ्यास करने से असंभव कार्य को भी संभव किया जा सकता है ।

इसलिए कहा जा सकता है कि ये बारह अनुप्रेक्षाएं केवल ध्यान में ही उपयोगी नहीं हैं अपितु हमारे सामान्य जीवन में भी उपयोगी है ।[41] आध्यात्मिक दृष्टि से भी यदि व्यक्ति इन बारह अनुप्रेक्षाओं का नित्य स्मरण करता है तो जो अति मोह-माया का जाल फैला हुआ है, जिससे सभी समस्याओं का जन्म होता है को अवश्य कम किया जा सकता है और मनुष्य को परम सुख की प्राप्ति हो सकती है । वर्तमान में अनेक संस्थानों द्वारा ध्यान करवाया जा रहा है जिसके प्रति तनाव ग्रस्त युवा पीढ़ी अधिक आकर्षित हो रही है ।[42] यह ध्यान पद्धति मानव जगत के लिए उपयोगी साबित हो रही है । अतः कहा जा सकता है कि मानसिक तनाव को दूर करने में जैन-दर्शन में प्रतिपादित अनुप्रेक्षाएं अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं ।

5.3 द्वादश व्रत

जैन-दर्शन में गृहस्थ के लिए बारह व्रत स्वीकार किए गए हैं जिनमें पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत हैं । अणुव्रत में पांच महाव्रत का अल्पांश में पालन करना बताया गया है । गुणव्रत व्यक्ति के बाह्य आचार का निर्माण करता है जबकि शिक्षाव्रत आंतरिक शुद्धता को निर्मित करता है ।[43] पांच अणुव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह की प्रासंगिकता पर पंच महाव्रत के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा की गई । इसलिए यहां पर पुनः पांच अणुव्रत की प्रासंगिकता पर चर्चा करना उचित नहीं है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि पांच अणुव्रत व्यक्ति

में सद्गुणों का विस्तार करके उसके आचरण को पवित्र, आदर्श व लोकहितकारी बनाते हैं । व्यक्ति का सद्चरित्र ही उसे सद्कर्मों को करने के लिए प्रेरित करता है । सदाचरण से समाज में बंधुत्व, सहिष्णुता व स्नेह भाव को बनाया जा सकता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह केवल श्रमण या भिक्षु के द्वारा ही पालन करना अनिवार्य नहीं है अपितु गृहस्थ भी कुछ मात्रा में कठोरता को छोड़ते हुए लौकिक जीवन में पालन कर सकता है ।[44] जैन-दर्शन में भिक्षु वर्ग को कृषि करने की भी मनाही की गई है परन्तु श्रावक जीविका हेतु कृषि कार्य कर सकता है, इसी तरह जीविका हेतु आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर सकता है जो अपरिग्रह व्रत का पालन कहा जाएगा । सत्य सदैव शाश्वत है, गृहस्थ को भी सदैव सत्य का ही पालन करना चाहिए । इसी तरह ब्रह्मचर्य का पालन करके समाज से महिला-विरोधी कुरीतियों व वेश्यावृत्ति की समस्या को दूर किया जा सकता है । अतः कहा जा सकता है कि समाज में सामंजस्यता, सहिष्णुता व परोपकार को बनाए रखने के लिए अणुव्रतों का पालन अति आवश्यक है ।[45] यदि समाज से पूरी तरह इन व्रतों का त्याग कर दिया जाए तो कुछ ही क्षण में सब-कुछ अस्त-व्यस्त हो जाएगा । इस तरह के वातावरण में एक दिन भी जीवन व्यतीत करना अति कष्टकारी हो सकता है । इसलिए कहा जा सकता है कि पांच अणुव्रत आज भी प्रासंगिक हैं ।

द्वाद्वश व्रत की कड़ी में अणुव्रत के बाद तीन गुणव्रत बताए गए हैं। **दिग्व्रत व्यक्ति** को मर्यादा बनाए रखने का उपदेश देता है ।[46] दिन-प्रतिदिन नैतिक व सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ प्रशासनिक व कानूनी नियमों का भी उल्लंघन किया जा रहा है । दिग्व्रत का पालन करके मर्यादित व व्यवस्थित समाज का निर्माण किया जा सकता है । **उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत** भोजन तथा कर्म से सम्बन्धित है ।[47] आधुनिक मानव शाकाहारी से मांसाहारी बनता जा रहा है, इसके लिए प्राणियों की हत्या करता है । इसके साथ ही अधिक खाने की प्रवृत्ति के कारण मोटापा जैसी समस्या ने भयंकर रूप धारण कर रखा है जिसके कारण अन्य बिमारियां भी बढ़ती जा रही है । भौतिकवादी युग में अधिक से अधिक धन प्राप्ति हेतु मनुष्य न करने योग्य कर्मों को भी कर रहा है जिससे पर्यावरण क्षरण व वैश्विक तापन की समस्याएं निरन्तर बढ़ती जा रही हैं । उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत का पालन करते हुए जीवों के प्रति हिंसा, मोटापा व पर्यावरण का संरक्षण किया जा सकता है । **अनर्थदण्ड विरमण** व्रत प्रयोजन रहित पाप के जो कारण हैं उनसे दूर रहने का व्रत है ।[48] आधुनिक प्रसारवादी प्रवृत्ति के कारण घातक हथियारों को निर्मित व संग्रह करने की प्रतिस्पर्धा लगी हुई है । परमाणु व हाइड्रोजन बम तैयार किए जा रहें हैं इससे विनाश के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । अनर्थदण्ड विरमण व्रत को धारण करके इस जगत का विनाश होने से बचाया जा सकता है । अतः कहा जा

सकता है कि गुणव्रत को धारण करके व्यक्ति व समाज में शांति व व्यवस्था को बनाया जा सकता है । अनेक प्रकार की व्याधियों व मानसिक तनाव से मुक्ति पायी जा सकती है तथा इस जगत् में बन्धुत्व की भावना को कायम किया जा सकता है । इसलिए जैन-दर्शन में वर्णित गुणव्रत तानाशाही, प्रसारवादी व व्याधियों से ग्रस्त समाज में अधिक प्रासंगिक है ।

शिक्षाव्रत को धारण करने के पश्चात् ही महाव्रतों के पालन का मार्ग प्रशस्त होता है । इसलिए आध्यात्मिक शांति की प्राप्ति हेतु शिक्षाव्रत का पालन अनिवार्य है ।[49] भौतिक सुख को ही वास्तविक सुख मानने के कारण हम सुख-दु:ख व संयोग-वियोग में समभाव नहीं रखते तथा अतिशीघ्रता से क्रोधित व दु:खी हो जाते हैं । प्रतिक्षण बदलती परिस्थितियों में भावात्मक बुद्धिमान होना आवश्यक है, तब ही हम सभी परिस्थितियों में समभाव रख सकते हैं । जीवन में आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि हम दु:खों को पकड़कर न बैठे अपितु तटस्थ रहते हुए निष्काम भाव से कर्म करते हुए आगे बढ़ते जाएं । **सामायिक व्रत** सुख-दु:ख में समभाव रखने का संदेश देता है । अत: विकट परिस्थितियों में भी धैर्य रखने व आगे बढ़ने के लिए सामायिक व्रत अति उपयोगी है। **देशव्रत** गमन करने का त्याग, भोजन, मैथुन का त्याग तथा मौन धारण करने का व्रत है ।[50] समाज में कुछ लोग बेवजह बहुत अधिक बोलने वाले भी होते हैं जो दूसरों का समय व्यर्थ करते हैं, ऐसे लोगों को

समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता । व्यभिचार को भी समाज में हेय माना जाता है क्योंकि इससे चरित्रहीनता बढ़ती है । मौन धारण करने से शरीर में ऊर्जा का संचय होता है इसलिए चरित्रवान, समाज में सम्मान तथा शारीरिक उर्जा को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम देशव्रत का पालन करें । **पौषधोपवास व्रत** बुरे कर्मों का त्याग करके उपवास रखना है ।[51] एक दिन उपवास रखकर हम अति भोजन की समस्या को दूर कर सकते हैं । महात्मा गांधी ने छुआछुत जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए उपवास व्रत को धारण किया । हमारे अन्दर जब तक शुद्ध विचारों का प्रवाह नहीं हो सकता तब तक आत्मशुद्धि नहीं होती । उपवास से आत्मशुद्धि संभव है इसलिए सन्मार्ग पर चलने के लिए उपवास अहम् भूमिका निभा सकता है । वर्तमान में बहुत से जन उपवास रखते हैं जिससे उन्हें आत्मिक शांति की अनुभूति होती है, अतः पौषधोपवास आज भी प्रासंगिक है । भारतीय परम्परा में सदैव ही 'अतिथि देवोभवः' की भावना रही है । जैन-दर्शन में भी **अतिथि संविभाग व्रत** का वर्णन प्राप्त होता है । बिना बताए आए अतिथि को भोजन, वस्त्र व स्थान आदि उपलब्ध करवाना **अतिथि संविभागव्रत** है ।[52] आधुनिक मानव स्वार्थवादी है । घर पर आए मेहमान को देखकर उसके माथे की रेखाएं बढ़ जाती है और न ही उसे आन्तरिक मन से इज्जत व सम्मान दिया जाता । भागदौड़ भरी ज़िन्दगी के कारण यह मूल्य निरन्तर खत्म होता जा रहा है । पुराने समय में जब कोई

अतिथि घर पर आता था तो मन खुश होता था तथा सुख-दुःख की बाते होती थी जिससे तनाव व चिंता भी कम हो जाती थी । आज का मानव अपनी चिंताओं को स्वयं में ही लेकर घुमता रहता है अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी मनोवृत्तियों में बदलाव लाए तथा कुछ क्षण दूसरों के साथ बिताएं ताकि चिंता व तनाव दूर हो सके । अतिथि संविभागव्रत को धारण करके परस्पर स्नेह व प्रेम की भावना को विकसित किया जा सकता है जिससे मानसिक शांति का अनुभव होगा ।

अतः कहा जा सकता है कि यदि आज के मानव के द्वारा जैन-दर्शन में वर्णित इन द्वादश व्रतों का पालन किया जाए तो लोक-कल्याणकारी, आदर्शवादी समाज का निर्माण किया जा सकता है । इन व्रतों को धारण करके नैतिक व सामाजिक मूल्यों को पुनः स्थापित किया जा सकता है तथा भाईचारे, सौहार्दपूर्ण व समाजवादी राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है । इन व्रतों को धारण करके आंतरिक शांति की प्राप्ति की जा सकती है, जिसकी खोज में मशीनी मानव इधर-उधर घूमता रहता है । इसलिए ये व्रत आज भी प्रासंगिक हैं ।

5.4 स्याद्वाद

भारतीय दर्शन को जैन-दर्शन द्वारा स्याद्वाद का एक अमूल्य सिद्धान्त दिया गया जो अहम् की भावना को दूर करके संभावना को महत्त्व देता है । यह सिद्धान्त उदारवादी विचारों को विकसित करता है । जैन-दर्शन में कहा है कि हमें सभी की बातों को स्वीकार करना चाहिए।

सभी के विचार भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं (जिसे हाथी के उदाहरण से समझाया गया है) तो यह नहीं कहा जा सकता कि मुझे ही पूर्ण ज्ञान है अन्य को नहीं । इस संसार में किसी को भी सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान नहीं है । कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है । प्रत्येक व्यक्ति का किसी वस्तु या विचार को धारण करने तथा उसे देखने की अलग-अलग दृष्टि होती है। जब व्यक्ति इस बात को जान लेता है कि सभी के विचार अपने-अपने दृष्टिकोण से उचित हैं तब वह दूसरों के विचार व ज्ञान के प्रति उदार हो जाता है । जिससे स्वतः ही 'अहम् सर्वेसर्वा' की भावना नष्ट हो जाती है।

मनुष्य से मनुष्य, समाज से समाज, सम्प्रदाय से सम्प्रदाय व राष्ट्र से राष्ट्र के मध्य वैचारिक द्वन्द्व है । एक समाज, सम्प्रदाय या राष्ट्र स्वयं के विचारों, व्यवस्था व मत को दूसरों से श्रेष्ठ मानता है जबकि जैन-दर्शन सभी को समान दर्जा देने का पक्षधर है । स्याद्वाद हमें उदारवादी विचारों की ओर बढ़ने के लिए मार्ग तैयार करता है । उदारवादी विचार ही परस्पर सामंजस्य व समानता को प्रफुल्लित करते हैं जिससे एक-दुसरे को हीन समझने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है । वर्तमान में विकासशील और विकसित राष्ट्रों के मध्य परस्पर वैचारिक द्वन्द्व है । वैचारिक द्वन्द्व को यथार्थ ज्ञान से दूर किया जा सकता है । जब मनुष्य या समाज को परम ज्ञान हो जाएगा, सही के साथ-साथ गलत तथा बन्धन

के साथ-साथ मोक्ष का भी ज्ञान हो जाएगा तो परस्पर द्वन्द्व व दु:ख भी कम हो जाएगा । वह मनुष्य धीरे-धीरे ज्ञान के स्तर में आगे बढ़ते हुए कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति कर लेगा तथा बन्धन से मुक्त हो जाएगा ।

स्याद्वाद के सात कथन स्वयं में नकारात्मकता व सकारात्मकता को समाहित किये हुए हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक नकारात्मक विचार व पदार्थ के साथ उसका सकारात्मक आधार होता है । अत: जीवन में मुश्किल परिस्थितियों में भी हताश व निराश नहीं होना चाहिए उस असफलता के साथ भी सफलता के संबंध जुड़े हुए हैं ।[53]

वर्तमान में स्वहित को अधिक महत्त्व देने के कारण कुछ लोग अपने मत को ही सही व अंतिम मानते हैं । जिससे परस्पर एक-दूसरे के प्रति मन-मुटाव पैदा हो जाता है और धीरे-धीरे यह भावना घृणा में परिवर्तित हो जाती है तथा एक-दूसरे से वैर की भावना रखने लगते हैं।[54] स्याद्वाद का सिद्धान्त किसी भी निर्णय को कठोर व स्थिर नहीं मानता, इसके अनुसार सत्य में परिवर्तन होता रहता है; यह समय, स्थान व काल के सापेक्ष है ।[55]

अत: किसी भी व्यक्ति को अपने विचारों को ही सत्य नहीं मानना चाहिए अपितु दूसरों को भी महत्त्व देना चाहिए । यदि इस तरह की प्रवृत्ति का विकास किया जाए तो द्वेष व घृणा के भाव को दूर किया जा सकता है । इससे श्रेष्ठ व हीन के भाव भी खत्म किए जा सकते हैं। समाज में सभी को समान माना जाए तो सभी का कल्याण संभव है।

अत: यदि विचारों से ही हम सभी को समान समझे तो कर्मों से हम स्वयमेव समानता को बढ़ावा दे सकते हैं । विचारों के समभाव होने से कर्म भी शुभ ही होंगे जो सद्चरित्रवान व्यक्ति का निर्माण करेंगे ।इससे समाज में करूणा, दया, परोपकार, सहानुभूति, स्नेह जैसे भावों को बढ़ावा मिलेगा और एक सर्वकल्याणकारी समाज का निर्माण होगा । इसलिए वैचारिक द्वन्द्वपूर्ण जगत् में स्याद्वाद अधिक प्रासंगिक है ।

5.5 आलोचनात्मक मूल्यांकन

जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्यों को अत्यन्त कठोर माना गया है । कुछ विद्वानों द्वारा अहिंसा के नियम का अत्यन्त कट्टरता के साथ पालन करने के कारण जैन-दर्शन का उपहास भी किया गया है । उनका मानना था कि जैनी लोग चलने से पूर्व मार्ग पर झाड़ू लगाते हैं, मुख पर पट्टी डालते हैं ताकि कोई जीव श्वास के साथ नाक में न चला जाए । यदि इन तथ्यों को याद रखा जाए तो जीवन लगभग असंभव हो जाएगा तथा मन में सदैव यह भय व्याप्त रहेगा कि किसी जीव की हत्या न हो जाए ।[56]

यह बात सही है कि जैन-दर्शन में अहिंसा आदि का बड़े कठोर रूप से पालन करने के लिए कहा गया है परन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि कठोर पालन का नियम भिक्षु वर्ग के लिए है जबकि गृहस्थ के लिए अल्पांश में महाव्रत का पालन करने का प्रावधान भी है ।[57] उन्होंने माना कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल प्राप्त होगा, यदि

मोक्ष की प्राप्ति करनी है तो अत्यन्त कठोर नियमों का पालन करना ही होगा अन्यथा एक गृहस्थ भी इन नियमों का पालन करते हुए आंतरिक शांति प्राप्त कर सकता है लेकिन मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है । यह सर्वविदित भी है कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है इसलिए जितना त्याग करेंगे उतने ही परम सुख की अनुभूति होगी । अतः यह कहकर कि जैन-दर्शन का नीतिशास्त्र अत्यन्त कठोर है, नकारा नहीं जा सकता ।

कुछ विद्वानों ने जैन-दर्शन पर यह भी आरोप लगाया कि इस दर्शन का उद्‌भव ब्राह्मणवाद के विरोध में हुआ और वेदों में वर्णित नैतिक मूल्यों का ही पुर्नव्याख्यान किया परन्तु यह सत्य नहीं है ।[58] जैन-दर्शन का उद्‌भव ब्राह्मण विरोधी नहीं था यदि ऐसा होता तो जैन-दर्शन का नेतृत्व कोई क्षत्रिय न करके अन्य जाति के लोग करते, क्योंकि क्षत्रियों को भी ब्राह्मण के समान अच्छा या बुरा समझा जाता था ।[59] जैन-मत का उद्‌भव परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के कारण जो मानसिक बेचैनी उत्पन्न हो रही थी, के कारण हुआ ।[60] जैन मतावलम्बियों का मानना था कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण नहीं होता, अच्छे कर्म व ज्ञान से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण व क्षत्रिय बन सकता है ।[61] इसके साथ ही जैन-दर्शन कभी भी हिन्दू-धर्म से बिल्कुल पृथक नहीं हुआ । महावीर के साथ ही जैनियों ने कुछ स्थान राम-कृष्ण के लिए भी सुरक्षित रख लिए थे और जब देश में अत्याचार हो रहा था तो जैनियों ने बड़ी सरलता से हिन्दू

धर्म में शरण ले ली तथा हिन्दु धर्म ने सहर्ष उनका स्वागत किया ।[62] कुछ विद्वानों ने जैन-दर्शन पर यह भी आरोप लगाया कि यह दर्शन सब कुछ त्याग करने के लिए प्रेरित करता है, अपने पास किसी भी प्रकार की सम्पत्ति रखने की मनाही करता है । यदि सभी इन उपदेशों का पालन करें तो मुश्किल परिस्थितियों के लिए मानव के पास कुछ नहीं होगा । जैन-दर्शन में वस्त्र का भी त्याग करने के लिए कहा गया है जो कि एक सभ्य समाज में उचित प्रतीत नहीं होगा ।[63] परन्तु उपर्युक्त आरोपों को पूर्णत: सही नहीं कहा जा सकता । जैन-दर्शन का अपरिग्रह का सिद्धान्त आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की मनाही करता है और यह उचित भी है क्योंकि परिग्रह के कारण ही एक व्यक्ति के घर पर व्यर्थ में भोजन खराब होता है और एक व्यक्ति रात को भुखा ही सोता है । यदि समान वितरण के नियमों का परिपालन किया जाए तो इस प्रकार की समस्याओं से निजात मिल सकती है ।[64] दूसरा पक्ष यह भी है कि त्याग की अवधारणा केवल जैन-दर्शन ने ही नहीं दी अपितु अन्य भारतीय दर्शनों में भी त्याग व दान का वर्णन मिलता है जो अपरिग्रह का ही पर्यायवाची है ।[65] वस्त्रों का भी त्याग करना जैन-दर्शन में अनिवार्य नहीं है, श्वेताम्बर मत के अनुयायी वस्त्रों का त्याग नहीं करते । दिगम्बर मत का मानना है कि जब तक हमारे मन में लज्जा के भाव रहेंगे तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[66] इसलिए कहा जा सकता है कि जिसे मोक्ष की प्राप्ति करनी है वह संसार से दूर जाकर निर्वस्त्र रहकर ध्यान व समाधि में लीन

हो सकता है, जो समाज के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं है। अन्यथा गृहस्थ भी सदाचरण करते हुए आत्मिक शांति प्राप्त कर सकता है ।

कुछ विद्वानों मुख्यत: शंकर व रामानुज ने स्याद्वाद की आलोचना करते हुए कहा कि दो परस्पर विरोधी गुण एक ही समय एक साथ उपस्थित नहीं रह सकते । उनका मानना था कि प्रकाश और अंधकार एक साथ नहीं रह सकते ।[67]

लेकिन यह भी सत्य है कि समय, काल व स्थान के अनुसार ज्ञान परिवर्तित हो जाता है । जैनियों का मानना है कि ज्ञान सापेक्ष है ।[68] पदार्थ में अनेक तत्त्व होते हैं, वह परिवर्तनशील है इसलिए एक स्थिर व कठोर सत्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।[69] वेदान्तियों ने तो यह भी कहा कि स्याद्वाद की क्रियात्मक उपयोगिता नहीं है, इसलिए इस विषय पर कुछ कहकर समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए ।[70] वेदान्तियों का यह आरोप पूर्णत: सत्य नहीं कहा जा सकता । जैन-दर्शन का स्याद्वाद का सिद्धान्त सभी के विचारों को महत्त्व देता है । यह सिद्धान्त अहम् को कम करके समभाव का विकास करता है तथा 'मैं ही सर्वज्ञ हूँ' की भावना को दूर करता है । यदि 'अहम्' का त्याग हो जाता है तो समाज में समरसता व समानता को स्थापित किया जा सकता है । इसलिए स्याद्वाद को नकारा नहीं जा सकता है ।

उपर्युक्त आलोचनात्मक विश्लेषण के बाद यही कहा जा सकता है कि जैन-दर्शन के सिद्धान्तों की प्रवृत्ति कठोर है, परन्तु इस कठोरता के बावजूद उनका आचारशास्त्र भौतिक सुखवादी समाज के लिए प्रासंगिक है।

5.6 निष्कर्ष

जैन-दर्शन का उद्‌भव लगभग 600 ई० पूर्व हुआ था । तत्कालीन समाज हताश व निराश था । नैतिक व सामाजिक मूल्यों का अवमूल्यन हो रहा था तथा मनुष्य चरित्रहीन हो रहा था । इन परिस्थितियों में भगवान् महावीर ने मोक्ष का मार्ग दिखाया । यह मार्ग त्रिरत्न का मार्ग था जिसमें सम्यग्-चरित्र के द्वारा नैतिक व सामाजिक मूल्यों की स्थापना की जा सकती थी । जैन-दर्शन द्वारा प्रतिपादित सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र का मार्ग आज भी महत्त्वपूर्ण है ।

पिछले कुछ दशकों से यह जगत शांति, अहिंसा, जीवन के प्रति आदर, जीव-कल्याण, शाकाहारवाद, पर्यावरण संरक्षण, तनाव-मुक्त जीवन और ध्यान जैसे मूल्यों से प्रभावित हो रहा है । उपर्युक्त मूल्यों का वर्णन जैन-दर्शन में भी स्पष्ट रूप से मिलता है । जैन-दर्शन का अपरिग्रह, हिंसा, सत्य, अस्तेय व ब्रह्मचर्य तथा द्वाद्वश व्रत की अवधारणाएं इन्हीं मूल्यों से सम्बन्धित है । यदि आज का आधुनिक व सभ्य मनुष्य जैन-दर्शन में वर्णित नैतिक व सामाजिक मूल्यों को जीवन में धारण करें तो समाज में शांति, भ्रातृत्व, मित्रभाव, समन्वय व सामंजस्य बनाया जा सकता है । महात्मा गांधी के द्वारा अहिंसा के सिद्धान्त का विश्वभर में

प्रचार किया गया जिसके कारण अब संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा भी विकसित व आतंकवादी गुटों के द्वारा की जा रही हिंसक घटनाओं का विरोध किया जाता है ।

हम सभी का जीवन परस्पर निर्भरता पर आधारित है, किसी अन्य को हानि पहुँचाकर हम स्वयं शांति से नहीं रह सकते यही नियम पारिस्थितिकी तंत्र का है । जैन-दर्शन का अपरिग्रह का सिद्धान्त पर्यावरण संरक्षण को प्रोत्साहित करता है । इसलिए सभी प्राणियों का सम्मान करते हुए जीवन-व्यतीत करने से प्रकृति में संतुलन बना रह सकता है जो हम सभी के लिए आवश्यक है ।

अपरिग्रह के बिना अहिंसा का पालन नहीं किया जा सकता, अहिंसा को धारण करके ही सत्य, अस्तेय व ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है । भौतिक साधनों से मोह, अपने-पराये के भाव तथा अधिक धन संग्रह करने की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य दु:खों से घिरा हुआ है । सुखवादी होने के कारण मनुष्य की वासना प्रवृत्तियाँ भी बढ़ रही हैं जिससे चरित्रहीनता व महिलाओं के प्रति अत्याचार भी बढ़ रहे हैं । यदि जैन-दर्शन में गृहस्थ के लिए प्रतिपादित द्वादश व्रतों का दैनिक जीवन में पालन किया जाए तो इस लौकिक जगत् में ही स्वर्ग की अनुभूति की जा सकती है ।

जैन-दर्शन के अपरिग्रह की अवधारणा भारत में अधिक प्रासंगिक है क्योंकि पश्चिमीकरण के उपभोक्तावादी विचारों के प्रभाव से यहां तृष्णा व स्वत्वबोधक प्रवृत्तियाँ बहुत अधिक बढ़ गई हैं । पश्चिमी देशों के

साथ-साथ भारत में बढ़ती सुखभोगी प्रवृत्ति के कारण ब्रह्मचर्य जैसे मूल्यों की प्रासंगिकता अधिक हो जाती है । हमारी शिक्षा पद्धति रोजगार आधारित होती जा रही है । शिक्षा पद्धति किसी देश की दशा व दिशा का निर्धारण करने में अहम योगदान करती है । यदि शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों को नैतिक मूल्यों को सिखाया व अभ्यास करवाया जाए तो एक सुनहरे राष्ट्र का निर्माण हो सकता है । आधुनिक तकनीकी व विज्ञान के अनुसंधानों को यदि मानव कल्याण में प्रयोग किया जाए तो धरती पर ही स्वर्ग बन सकता है । मानव कल्याण की भावना का विकास आध्यात्मिक ज्ञान से किया जा सकता है । ऐसे समय में जब साम्प्रदायिकता, घृणा, हिंसा, और आतंकवाद जैसी समस्याएं तेजी से फैल रही हैं तब भगवान् महावीर के उपदेश हमारे लिए अधिक उपयोगी हैं यदि उनका व्यावहारिक रूप से पालन किया जाए ।

जैन-दर्शन एक प्राचीन दर्शन होते हुए भी विज्ञान व तर्क आधारित है जो उसे आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक बनाता है । प्रजातान्त्रिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि सभी के विचारों को प्रश्रय दिया जाना चाहिए । जैन-दर्शन का स्याद्वाद सभी को समान महत्त्व देने का सिद्धान्त है इसलिए आधुनिक प्रजातन्त्र को विकसित करने हेतु स्याद्वाद आज भी प्रासंगिक है ।

विज्ञान व तकनीकि के विकास ने शारीरिक सुख तो बहुत दिया परन्तु इसके साथ ही मनुष्य की आंतरिक शांति को छीन लिया । खासकर

युवा पीढ़ी आंतरिक शांति के लिए प्राचीन परम्पराओं को ढूंढने लगी जिससे पुनः प्राचीन भारतीय दर्शनों का महत्त्व बढ़ गया है । बुद्धिजीवी वर्ग भी इस बात से चिंतित है कि किस प्रकार से नैतिक व सामाजिक मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है, किस प्रकार मानसिक तनाव को दूर किया जा सकता है व कैसे परम सुख की प्राप्ति की जा सकती है। इन सभी प्रश्नों का जवाब या समाधान हमें जैन-दर्शन के नीतिशास्त्र से प्राप्त हो सकता है । जैन-दर्शन व्यक्ति को सम्पूर्णता की ओर ले जाता है । वह मनुष्य को लौकिक सुख से आध्यात्मिक शांति का मार्ग दिखाता है ।

मनुष्य के सभी दुःख आध्यात्मिक ज्ञान व जीवन के परम लक्ष्य को जानने से दूर हो सकते हैं । जिससे स्वतः ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह व परार्थ के भाव तथा आत्म-ज्ञान प्रकट होता है । अतः यदि त्रिरत्न के आदर्श रूप का हम वास्तविक रूप से पालन करें तो हम स्थायी शांति स्थापित कर सकते हैं । हमारे सभी संघर्ष, प्रतिद्वंद्विता व लड़ाई का अंत हो सकता है । जीवन सौहार्दपूर्ण, सद्भावपूर्ण व खुशहाल बन जाएगा । मनुष्य के लिए और क्या जरूरत रह जाएगी जब वह धरती पर ही दिव्य जीवन व्यतीत करेगा।

अंत में कहा जा सकता है कि इस बदलते परिवेश में जैन-दर्शन के नैतिक व सामाजिक मूल्य अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि इन्हें धारण करके ही इस अशांत जगत् में शांति कायम की जा सकती है ।

संदर्भ सूची :

1. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 1/2
2. मंगल प्रज्ञा, समणी, **आर्हती दृष्टि**, पृ० 88
3. **उतराध्ययन गाथा**, 28/30
4. छगनलाल जैन एवं अन्य, **जैनों का संक्षिप्त इतिहास दर्शन**, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 90–93
5. **तत्त्वार्थ सूत्र** 5/29
6. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **फंडामेंटल ऑफ जैनिज्म**, पृ० 109
7. भार्गव दयानन्द, **जैना एथिक्स**, पृ० 89–90
8. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 109
9. मंगल प्रज्ञा, समणी, **जैन आगम में दर्शन**, पृ० 255–56
10. राधाकृष्णन, एस०, **भारतीय दर्शन (भाग–1)**, पृ० 263
11. **वही**, पृ० 239
12. **वही**, पृ० 239
13. **उत्तराध्ययन**, 28.30
14. **बृहदरण्यकोपनिषद्**, 1.3.28
15. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**,, पृ० 239
16. शर्मा, नरेन्द्र कुमार, **जैन–दर्शनसारः**, पृ० 163
17. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 1.1
18. मिश्र, हृदयनारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, **नीतिशास्त्र की भूमिका**, पृ० 393
19. शाह, नटुभाई, **जैनिज्म : दा वर्ल्ड ऑफ कॉनेक्रर**, पृ० 220
20. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 9.5
21. **उत्तराध्ययन सूत्र**, 24/21–26
22. **स्थानांग सूत्र**, 5/34–35
23. मिश्र, हृदयनारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 395
24. **आचारसूत्र**, 2/15
25. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 164
26. **योगशास्त्र**, 2/61
27. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 7/3
28. **योगशास्त्र**, 1/22

29. **पुरुषार्थसिद्धयुपाय**, 3/102
30. **योगशास्त्र**, 2/76
31. सुभाषा, साधवी, **जैन–दर्शन**, पृ॰ 164
32. **मूलाचार**, 5/143
33. भार्गव, दयानन्द, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 121
34. जैन सागरमल, **ब्रह्मणिक एंड श्रमणिक कल्चर**, पृ॰ 94
35. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 177
36. **योगशास्त्र**, II /106
37. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **पूर्वउद्धृत**, पृ॰ 180
38. **उत्तराध्ययन सूत्र**, 17/11
39. सुभाषा, साध्वी, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 180
40. मंगल प्रज्ञा, समणी, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 72–73
41. **वही**, पृ॰ 75–76
42. **वही**, पृ॰ 77
43. भार्गव, दयानन्द, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 102
44. **वही**, पृ॰ 102–103
45. राधाकृष्णन, एस॰, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 263–264
46. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 7/25
47. साधवी, सुभाषा, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 170
48. **वही**, पृ॰ 173
49. **वही**, पृ॰ 174
50. **वही**, पृ॰ 176
51. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 7/26
52. **योगशास्त्र**, 3/87
53. राधाकृष्णन, एस॰, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 246
54. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ॰ 150–151
55. राधाकृष्णन, एस॰, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 247
56. **वही**, पृ॰ 264–65
57. भार्गव, दयानन्द, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 102
58. राधाकृष्णन, एस॰, **पूर्वोद्धृत**, पृ॰ 237
59. **वही**, पृ॰ 237
60. **वही**, पृ॰ 238

61. **वही**, पृ० 265
62. **वही**, पृ० 266
63. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 263
64. साधक, जगदीश प्रसाद जैन, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 178
65. भार्गव, दयानन्द, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 112-113
66. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 263
67. **वही**, पृ० 246
68. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ० 148
69. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 247
70. **वही**, पृ० 246